प्राचीन भारत में आयुर्वेदिक शिक्षा

डॉ0 विजय कुमार*

हमारा देश भारतवर्ष अति प्राचीन काल से धन–धान्य में ही नहीं अपितु जीवन के विविध आयामों में सुसम्पन्न रहा है। विश्व की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद भारत की देन है और फिर वहाँ से अब तक विविध क्षेत्रों में चाहे वह विज्ञान का हो या साहित्य का, भारत का भंडार परिपूर्ण है।

प्रतिपाद्य विषय आयुर्वेद की शिक्षा का प्रथम ज्ञान बड़े पैमाने पर हमें वेदों से ज्ञात होता है जिसमें खासकर अथर्वेद तो आयुर्वेद का भंडार है जिसमें दर्जनों रोगों का निदान है। फिर वैदिक काल से आयुर्वेद के विकास की जो श्रृंखला शुरू होती है वह निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुये चरक, सुश्रुत और जीवक जैसे प्रतिभावान आयुर्वेद के सितारे से परिपूर्ण है। मूलतः आयुर्वेद शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग का नाम है।1

'नित्य प्रति चलने से, कभी एक क्षण भर के लिये भी न रूके इसे आयु कहते हैं। आयु का ज्ञान जिस शिल्प या विद्या से प्राप्त किया जाता है, वह आयुर्वेद है। यह आयुर्वेद मनुष्यों की भाँति वृक्ष, पशु–पक्षी आदि के साथ संबंधित है। इसलिये इनके विषय में भी संहिताएँ बनाई गयी। (अग्निपुराण के अनुसार सुश्रुत के प्रति धन्वन्तरि ने मनुष्य, अश्व, गौ, गज, वृक्ष के लिये भी आयुर्वेद कहा था)। ज्ञान का प्रारंभ सृष्टि से पूर्व हुआ ऐसा भी मानने वाले विद्वान हैं। उनके विचार से आयुर्वेद पहले उत्पन्न हुआ और उसके बाद प्रजा उत्पन्न हुयी।2 आयु के लिये क्या उपयोगी है, क्या अनुपयोगी; यह जानना बहुत आवश्यक है। इस प्रकार आयु संबंधी ज्ञान शाश्वत है। केवल इसका बोध और उपदेश मात्र ही ग्रंथों में कहा गया है। जिस प्रकार शिशु के उत्पन्न होने से पूर्व माता के स्तनों में दूध आ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य या सृष्टि के उत्पन्न होने से पूर्व परमात्मा ने जीविका के साधन बनाए थे। इन साधनों में आयुर्वेद भी था। इसीलिये यह प्राचीन एवं शाश्वत है।3

लम्बी आयु एवं सुखद जीवन मानव की प्रथम कामना रहती है। भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक संतापों से मुक्ति का कोष शास्त्र होता है। आयुर्वेद मूलतः रोग निवारण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा का शास्त्र है। अतः यह मानवोपयोगी तथा महत्वपूर्ण विद्या है। यह समाज, अर्थ, अध्यात्म एवं संस्ति के आधारभूत तत्व को अपने में समाहित किये हुए है। एक स्वस्थ मानव अपने जीवन में सरल–सुगम मार्गों का अवलम्ब कर लक्ष्य की प्राप्ति में आगे बढ़ता है। जो एक अस्वस्थ व्यक्ति से संभव नहीं है। अस्वस्थ व्यक्ति बिसात कि स्थिति में सही निर्णय लेने में विफल होता है। सही अर्थों में ''मन और शरीर की रूग्णता की स्थिति में जप–तप, ध्यान–धारणा, एकाग्रता, तीर्थाटन, देवोपासना, परोपकार आदि धार्मिक कर्म, शिल्प, वाणिज्य, .षि, व्यापार, देशान्तर–गमन आदि आर्थिक प्रयत्न मनोवांछित आहार–विहार, विषयोपभोग, रति–प्रयोग एवं मानसिक विकारों (लोभ–शोक–मोह–मद–मात्सर्य –ईर्ष्या–द्वेष– भय–चिन्ता आदि) का दमन, इन्द्रियनिग्रह, ईश्वर–भजन आदि मोक्ष के उपायों का भी सम्यक् प्रकार से उपयोग नहीं हो सकता।''4

स्वस्थ मन में सही विचार उत्पन्न होता है और जो ज्ञान–विज्ञान मानव के जीवन को निरोग और स्वस्थ रखता है, वही सही अर्थों में आयुर्वेद है। आयुर्वेद का तात्पर्य मात्र मानव समुदाय से नहीं वरण सम्पूर्ण धरती के प्राणिजगत से है। हमारे ऋषि, मुनि, ज्ञानी एवं तपस्वीयों ने सदैव बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की भावना से अनुप्राणित होकर आयुर्वेद की रचना की थी। स्वस्थ्य काया से ही स्वस्थ्य मार्गदर्शन सम्भव है।

उदाहरण के तौर पर हम वैदिक काल को ले सकते हैं, जिसमें पृथ्वी, जल, वायु, धान्य एवं औषधी की प्रचुरता थी। फलतः वैदिक मानव स्वस्थ और अन्तर्रात्मा से सम्पन्न थे, किन्तु वैदिक काल के पराभव के साथ मानव जीवन में ह्रास प्रारंभ हुआ। राग, द्वेष, धन–सम्पत्ति, माया–ममता, क्रोध और आक्रामक नीति बढ़ती गयी। अधर्म का बोलबाला हुआ और विविध प्रकार के रोग–व्याधि उत्पन्न हो गये। उनके व्रत, .षि, तप समाज एवं सांस्तिक जीवन में तब्दीली आ गयी। फलतः तत्कालीन मुनियों ने आयुर्वेद के माध्यम से उनके कष्ट निवारण का यत्न किया। मानव जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार मूल तत्व हैं, किन्तु इन तत्वों की प्राप्ति में रोग बाधक होता है। कोई भी व्यक्ति बगैर रोगमुक्त हुये अथवा स्वस्थ हुये सही ढंग से अपने धर्म–कर्म के कार्यों को निष्पादित नहीं कर सकता और सतत् विघ्न–बाधाएँ आती रहती हैं, जो आध्यात्म के अनुसार इस जीवन में कष्टप्रद तो है हीं, अगले जीवन में भी बाधक है। वास्तव में आयुर्वेद मानव सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा हुआ है और मानव पीड़ा से मुक्ति इसका मूल उद्देश्य है। यह विद्या प्राणि मात्र को रोगमुक्त कर सफल जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है। आयुर्वेद असीमित है और इसका क्षेत्र सम्पूर्ण जगत है, किन्तु उसका जन्म स्थान भारत की भूमि है, जहाँ आयुर्वेद के एक से एक रत्न उत्पन्न हुए और प्र.ति में फैले वनस्पति, पेड़–पौधों को रसायन में तब्दील किया और इसकी औषधीय गुणों को समझा, परखा, जाना और उपयोग किया। फिर इसने इन वनस्पतियों के माध्यम से आसव, अरिष्ट, पाक, चूर्ण, अवलेह एवं विविध पेटेंट दवाओं का निर्माण किया। घोर विज्ञान

***ग्राम+पो0–मछही,सकरा,मुजफ्फरपुर**

के युग एवं एलोपैथ के प्रचलन के काल में भी च्यवनप्राश का उपयोग आयुर्वेद की सत्ता को स्वीकार करने का महत्वपूर्ण बिन्दू है। आयुर्वेद का द्वार सभी पैथ के लिये खुला हुआ है, किन्तु दुखद पहलू यह है कि आयुर्वेद के विकास के लिये भारत में सरकारी स्तर पर अल्प मात्र में शोध और अनुसंधान सम्भव हो सका है। जिस ढंग से एलोपैथ चिकित्सा में शोध और अनुसंधान हुआ, यदि आयुर्वेद में भी हुआ रहता तो विश्व स्तर पर यह परचम फहरा दिये रहता, किन्तु राजाश्रय के अभाव में यह गतिहीन हुआ। वैदिकल काल में जिस आयुर्वेदिक प्रक्रिया का जन्म हुआ उसका विकास सुश्रुत एवं चरक ने आगे बढ़ाया। नयी पद्धतियों के माध्यम से निदान एवं दवा निर्माण प्रारंभ हुआ। आज के रसायन शास्त्र में आयुर्वेद के रस एवं वनस्पति के द्रव्यों ने स्थान ग्रहण किया और रस–रसायन तथा भस्म आदि का निर्माण शुरू हुआ। उस काल के ऋषियों ने संकुचित भावना नहीं कि वरण खुले हृदय से समष्टि की भावना लिये कल्याणकारी कार्य कर रहे थे।

''आयुर्वेद मात्र चिकित्साशास्त्र नहीं है, अपितु यह एक दर्शन है, जो स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण और रूग्ण व्यक्ति के रोग की मुक्ति तो करता ही है, साथ ही सांसारिक सर्वोच्च सुख एवं पारमार्थिक सर्वोच्च आनन्द की उपलब्धि के लिये निर्भ्रान्त मार्गदर्शन भी करता है। आयुर्वेद की एक महती विशेषता यह है कि यह चतुर्विंशतित्त्वात्मक समस्त पुरूष की चिकित्सा करता है, जबकि अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ रोगी के किसी खास अंग की चिकित्सा करती है। सम्प्रति विशेषज्ञता के नाम पर एक–एक शरीराग्ङ को बाँटकर चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों की भरमार है।''5

आयुर्वेद आयु एवं वेद दो शब्दों के योग से बना है जिसमें प्रथम शब्द आयु का सम्बन्ध शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा से है, साथ ही चर्म, नेत्र, जिह्वा, घ्राण और श्रोत्र ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा हाथ, पैर, वाणी, मलद्वार और मूत्रद्वार ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। ज्ञान का प्रतिसंधाता आत्मा होती है। आयु का स्वरूप शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा का अदृष्टवश संयोग होता है। कहा गया है चैतन्यानुवर्तनमायुः अर्थात् जीवन के काल को आयु कहा जाता है। अस्तु आयुर्वेद उस शास्त्र को कहा जाता है जो आयु से संबंधित समस्त ज्ञानों को देता है। पुनः आयुर्वेद को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि हितायु, अहितायु, सुखायु और दुःखायु प्रकारों का वर्णन तथा आयु के स्वरूपादि का जो ज्ञान देता है, उसे आयुर्वेद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। आयु चार प्रकार के होते हैं। (1)सुखायु (2) दुःखायु (3) हितायु एवं (4) अहितायु। ये चारों शब्द और इसकी स्थिति शब्दार्थ से ही स्पष्ट है। चरक ने शरीर रचना के आधार पर आयु निर्धारण किया है। मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों की वि.तियों के आधार पर भी आयु की जानकारी ली जा सकती है। फलतः इस ज्ञान के बाद

मानव अपने को संयमित जीवन जिकर रोग निवारण की कोशिश करता है। वह अपने रोग मुक्ति के लिये ऋतु परिवर्तन पर ध्यान देता है और रोग निवारण हेतु अपने दैनिक दिनचर्या को सही दशा–दिशा देता है। आयुर्वेद का अभिष्ठ रोग निवारण भी है। एक स्वस्थ मानव के लिये वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थिमज्जा आदि समान अवस्था में हो और मल–मूत्र सही स्थिति में परित्याग करता हो, तो उसे स्वस्थ की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। आयु एवं जीवन को आयुर्वेद में स्पष्ट करते हुए कहा गया है– शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा ही आयु है और उसकी समुचित व्यवस्था ही जीवन है। अतः आयुर्वेद उसे कहते हैं जो आयु का ज्ञान, उसके संरक्षण और उसके गतिशीलता का ज्ञान देता है। यह धरती के समस्त प्राणियों की चिकित्सा से सम्बन्धित शास्त्र है। वैदिक ग्रंथों में त्रिसूत्र यथा हेतुसूत्र, लिंगसूत्र तथा औषसूत्र की जानकारी मिली। आयुर्वेद को पुण्यतम वेद भी कहा गया है।

गुप्त काल के महानतम् कवि कालिदास का वर्णन आया है कि गुप्त वंश से पूर्व भी अष्टांग आयुर्वेद के अलग–अलग वैद्य थे और समाज में अभूतपूर्व प्रतिष्ठा थी। इतना ही नहीं अंग–प्रत्यंगों के विशेषज्ञ वैद्य भी उस काल में थे। कालिदास ने कौमारभृत शास्त्रज्ञ वैद्यों का स्पष्ट उल्लेख किया। प्रसूतिकागृह का भी वर्णन आया है। भगवान बुद्ध के काल में प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक थे जो सही अर्थों में महान् शल्य चिकित्सक थे। जीवक ने उज्जैन के सम्राट प्रद्योत को पाण्डु रोग नाक के माध्यम से घृत डालकर दूर कर दिया और मगध के सम्राट बिम्बिसार के भगन्दर को जीवक ने एक ही लेप में समाप्त कर दिया। जीवक की शल्य क्रिया का श्रेष्ठतम उदाहरण यह भी है कि उसने राजगृह के प्रधान श्रेष्ठी के शिरःशूल को समाप्त करने के लिये माथे का ऑपरेशन कर कीड़ा निकाल दिया और उन्हें रोगमुक्त कर दिया। भारतीय शल्य चिकित्सा के विकास एवं प्रगति का यह महत्वपूर्ण अध्याय था।

कालान्तर में धार्मिक जगत् में चार्वाक और जैन आदि नास्तिक तथा राजनैतिक जगत् में हूण एवं शक आदि जातियों ने पूर्व की परिपाटी को भंग कर दिया। शस्त्र एवं शास्त्र की व्याख्या में वक्त गुजरते गये। साहित्यिक चर्चा में कमी आयी, किन्तु आयुर्वेद जीवित रहा। गृह सूत्रों में घरेलू स्वास्थ्य और सुख के उपाय प्रतिपादन करने के अलावे और कुछ नहीं है। इसे स्पष्ट करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि युद्ध भूमि में शस्त्र, औषधी, तैल और वैद्यों का रहना जरूरी है। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद निरन्तर अपने उद्देश्य में संलग्न था। ''गुप्त नरेशों ने प्राचीन महर्षियों के साहित्य को फिर से प्रतिष्ठित करना प्रारम्भ किया। धन्वन्तरि, आगेय और सुश्रुत की चिकित्सा की ओर ही उनका विशेष ध्यान था। उन्होंने प्राचीन चिकित्सा पद्धति के आधार पर विद्वान वैद्यों का ही आदर किया। अनेक औषधालय

भी स्थापित किये, जहाँ औषधियाँ मुत बांटी जाती थी। पहला चीनी यात्रीफाहियान चन्द्रगुप्त द्वितीय के युग में (405 ई0 से 411 ई0 तक) भारत भ्रमण के लिये आया था। वह पश्चिमी चीन की ओर से खोटान के रास्ते पामीर, स्वात और पेशावर होता हुआ तक्षशिला आया। वहाँ से पाटलिपुत्र। उसने लिखा है कि पाटलिपुत्र में एक अत्यन्त विशाल औषधालय था, जहाँ चिकित्सा और औषधियाँ मुत मिलती थी। औषधियाँ ही नहीं, पथ्य, भोजन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी बिना मूल्य दी जाती थी। दूसरा यात्री ह्वेनसांग 630 ई0 में पश्चिमीय चीन के रास्ते गान्धार होता हुआ नालन्दा पहुँचा था। उसने भी लिखा है कि सड़कों पर धर्मशालायें थी, जिसमें यात्रियों को भोजन और औषधियाँ मुत दी जाती थी। इन सब राजकीय विभागों में भिक्षुओं और सिद्धों को ठौर न था। अब बौद्ध धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त न था, क्योंकि गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मानुयायी थे। इस कारण अशोक की भाँति बौद्ध धर्म में बढ़ती हुयी गन्दगी को साफ करने की व्यवस्था करने वाला कोई न था। इसका फल यह हुआ कि बौद्ध धर्मावलम्बी मौर्य सम्राटों ने बौद्ध समाज का बहिष्कार करके जो महायान सम्प्रदाय स्थापित किया था, वह तो बुद्ध भगवान के बताये मार्ग पर चलने का उद्योग करता भी रहा, परन्तु अवशिष्ट लोग, जिन्हें हीनयानीय कहा जाता था, धीरे–धीरे मन्त्र यान, लिंगयान और वज्र यान जैसे सम्प्रदायों में विभक्त हो गये।''6

पाँचवीं सदी ईसा काल में भारत की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त दारून हो गयी और विदेशी हमलावरों ने इसकी संस्ति को विनष्ट करने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ा। इन आक्रमणकारियों में शक, हूण, यूनानी, ईरानी और अरबी की प्रधानता थी। सर्वत्र शस्त्र की प्रधानता थी और शास्त्र का मार्ग अवरूद्ध था। महत्वपूर्ण पुस्तकों को जला दिया जा रहा था और पुस्तकालयों में आग लगा दी जाती थी। फलतः आलोच्य काल के इतिहास को जानने में शोधार्थी को कठिनाई होती है। गुप्त काल से 300 वर्ष पूर्व तक इन विदेशी हमलों की वजह से विकास नहीं हो सका और इसी काल विशेष में चरक ने चरक संहिता लिखा। फिर गुप्त साम्राज्य के काल में चतुर्दिक विकास का क्रम प्रारंभ हुआ। संहिताओं, पुराण एवं स्मृतियों की रचना ने ज्ञान के भंडार को परिपूर्ण किया। बहुतेरे शोध और अनुसंधान भी हुये। आयुर्वेद के उत्पत्ति का ज्ञान, ब्रह्मवैवर्तय पुराण से भी हमें होता है और अग्निपुराण में भी आयुर्वेद की झलक मिलती है। ''अग्निपुराण में सिद्धौषधानि, सर्वरोगहराणि, औषधानि, रसादि–लक्षण, वृक्षायुर्वेद, नाना रोगहराणि औषधानि, मंत्ररूप औषध, मृत संजीवनीकर, सिद्धयोग, कल्पसागर, गज चिकित्सा, अश्व वहिनसार, अश्व चिकित्सा, शान्त्यायुर्वेद, गोनसादि चिकित्सा, बालाग्रहहर, बालतंत्र चिकित्सा से संबद्ध है।''7

रोगों के निवारण के कतिपय उपाय भी दर्शाये गये हैं, यथा– नाक से रक्त वमन के लिये दूब का रस, बच्चों के लिये अवलेह, दाँत से खून निकलने में गिलोय, कुष्ठ में खदिर, आँखों के लिये त्रिफला आदि बतलाये गये हैं। घोड़ा एवं हाथियों के चिकित्सा

के भी सूत्र पुराण में उपलब्ध हैं। शल्य चिकित्सा की चर्चा नहीं आयी है। धातु के भस्म की भी चर्चा चूर्ण के रूप में उपयोग करने का ज्ञान संहिताओं से मिलता है। इसी प्रकार गरूड़ पुराण के माध्यम से रत्नों के धारण करने और उनके लाभ–हानि का ज्ञान प्राप्त होता है। चिकित्सा सम्बन्धी बातें, यथा– सौन्दर्य प्रसाधन, बाल के लिये तेल, वशीकरण, वाजीकरण, नेत्र रोग और रसायन की भी चर्चा आयी है।

धन्वन्तरि ने सुश्रुत को सम्बोधित करते हुए कतिपय रोगों के निदान की चर्चा की है। इसके प्रथम अध्याय का श्री गणेश अष्टांग हृदय की पंक्तियों से हुआ है। रोगों के लक्षण एवं कारण की भी चर्चा आयी है। कफ, पित्त, वायु एवं ज्वर के लिये दवाओं का उल्लेख मिलता है। कास, श्वास, मूत्राघात, प्रमेह, यक्ष्मा, रक्तपित्त निदान, पाण्डुशोथ, कुष्ठ रोग, .मि रोग, वात व्याधि एवं वात रक्त निदान की भी चर्चा है।

दवाओं के सेवन की विधि, दवा की महत्ता, स्त्री रोग, कुष्ठ, शूल एवं भगन्दर का भी निदान अंकित है। दो अध्याय में विविध रोगों की चर्चा आयी है। उच्चाटन, गर्भधारण एवं वशीकरण के निदान भी बतलाये गये हैं। लगभग 15 अध्यायों में विभिन्न प्रकार की औषधियों की चर्चा आयी है। तत्कालीन आयुर्वेदिय चिकित्सा पद्धति के अनुसार रात्रि में दही खाने पर रोक है और मुख को जल से भरकर उस जल से आँख धोने पर नेत्र रोग से मुक्ति संभावित है। दन्त चिकित्सा में हिंगुल का उपयोग लाभदायक था। गरूड़ पुराण में जो भी आयुर्वेद संबंधी जानकारी दी गयी है वह मूलतः गुप्तकालीन है। फिर स्कन्दपुराण में कहा गया है कि आरोग्य दान सबसे बड़ा दान है। आज के अस्पतालों की तरह गुप्त कालीन औषधालय थे, जहाँ रोगी को भोजन, दवा की व्यवस्था थी। गुप्त से कुछ ही पूर्व सम्राट अशोक ने भी मानव और पशु के लिये भी औषधालयों का निर्माण कराया था। कहा गया है कि आरोग्यशाला निर्माण से ज्यादा पुण्य धरती पर दूसरा नहीं है। आरोग्यशाला का निर्माण सही ढंग से होना चाहिए और उसमें विद्वान वैद्यों के साथ–साथ सही खान–पान एवं फल–फूल की व्यवस्था होनी चाहिए। वैद्यों को यह ज्ञान होना चाहिए कि औषधी निर्माण किन वस्तुओं से हुआ है, उसकी शुद्धता, उपयोग एवं निदान में उन्हें दक्षता होनी चाहिए। चिकित्सक को मृदुभाषी होना परमावश्यक है।

संदर्भ सूची

1. अत्रिदेव विद्यालंकार – आयुर्वेद का वृहत इतिहास, पृ0– 13
2. काश्यप संहिता
3. अत्रिदेव विद्यालंकार – आयुर्वेद का वृहत इतिहास, पृ0– 13
4. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, पृ0–01
5. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, पृ0–230
6. आयुर्वेद का वृहत् इतिहास–अत्रिदेव विद्यालंकार,पृ0–113
7. अत्रिदेव विधालकार– आयुर्वेद का वृहत् इतिहास, पृ0 – 218